उपसंहार

भूमंडलीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप तीसरी दुनिया, वृद्धपूँजीवादी आर्थिक और सांस्कृतिक उपनिवेशवाद के कब्जे में पडी है। उत्तर औपनिवेशिकता का एक आयाम औपनिवेशिकता के पश्चात् उपनिवेशित देशों की कला, भाषा, साहित्य, संस्कृति आदि के स्तर पर हुए सशक्तीकरण का है और दूसरा आयाम बाज़ारीकरण और उदारीकरण से उत्पन्न 'विश्वग्राम' की संकलपना का है। दोनों स्तरों पर कला, समाज, परिवार, नारी और दलित संबन्धी विचारों की पुनर्व्याख्या और पुनर्रचना हुई हैं।

वैश्वीकरण, बहुराष्ट्रीय निगम, बाज़ारतंत्र, पॉपुलर कल्चर, विज्ञापन, वृद्धपूँजीवाद जैसे उत्तराधुनिक अभिलक्षणों के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी उपन्यासों का विश्लेषण संभव है। जगदीश चतुर्वेदी का 'कनॉट प्लेस' और 'कथासर्कस', नासिरा शर्मा का 'ठीकरे की मंगिनी', मृदुला गर्ग का 'कठगुलाब' और 'उसके हिस्से के धूप', अलगा सरावगी का 'कलिकथा बया बाइपास', कमलेश्वर का 'कितने पाकिस्तान' आदि उपन्यास उत्तर औपनिवेशिक भावबोध से ओत-प्रोत है। प्रतिदर्श के तौर पर सुरेन्द्र वर्मा के चर्चित उपन्यास 'मुझे चाँद चाहिए' लिया गया है।

प्रतिभासंपन्न बहुमुखी रचनाकार सुरेन्द्र वर्मा किशोरावस्था से ही एन.एस.डी. से जुडे रहने के कारण उनका साहित्यिक व्यक्तित्व अन्य साहित्यकारों से अलग है। उनकी रचनाधर्मिता निरंतर भारतीय परंपरा और वृद्धपूँजीवादी सभ्यता के द्वन्द्व का सामना करती दिखाई देती है। उनके अन्य दो उपन्यास हैं - 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' और 'अंधेरे से परे'। इनमें महानगरीय जीवन की त्रासदी, विस्थापित मूल्यों की अभिव्यक्ति, उपभोक्तावादी संस्कृति आदि पर प्रकाश डाला गया है। उनके दो कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए हैं - 'इतना सुंदर जोडा' और 'प्यार की बातें तथा अन्य कहानियाँ'। उन्होंने कुलमिलाकर छः नाटक लिखे हैं, जिसमें 'सूर्य की पहली किरण से अंतिम किरण तक', 'आठवाँ सर्ग' आदि उल्लेखनीय हैं। उनका एकांकी संग्रह है 'नींद क्यों रात भर नहीं आती'। सुरेन्द्र वर्मा की व्यंग्यकृति 'जहाँ बारिश न हो' में चौदह व्यंग्य लेख संकलित हैं। समीक्षक एवं कवि के रूप में भी आपकी विशिष्ट पहचान है।

सभ्यता की पहली लहर - कृषक संस्कृति ने कला और सौंदर्यसंबन्धी जितने प्रतिमानों को रचा, उनका चित्रण 'मुझे चाँद चाहिए' के संस्कृत नाटकों के प्रसंगों से हुआ है। हवा, फूल, मिट्टी, वन, बादल जैसे प्रकृति के शुद्ध और सहज तत्वों से निर्मित सौंदर्य की अभिव्यक्ति उपन्यास में हुई है। 'वर्षा' की सौंदर्य चेतना को उगनेवाली 'ऋतुसंहार' की पंक्तियाँ हैं - 'देखो प्रिय, जल की फुहारों से भरे हुए मेघों के मतवाले हाथी पर चढी हुई, चमकती विधुत-पताकाओं को फहराती हुई और मेघ-गर्जना के नगाडे बजाती हुई...आ पहूँची है।'

उपन्यास में कालिदास की रचनाओं के द्वारा सामंतवादी सौंदर्यबोध का पर्दाफाश हुआ है। इस सामंतवादी सौंदर्यबोध के समर्थन के रूप में वर्षा के पिता शर्माजी का चित्रण हुआ है। अतः वह अपने द्वारा संकलित रचनाओं और इसकी सजावट में सौंदर्य का असली रूप देखता है- 'चौखंबा सुरभारती से छपी 'ग्रंथावली' उनकी आलमारी के ऊपरी खाने में 'गीता' के बाद शोभा पाती थी।'

औपनिवेशिकता की वजह से सामंती सौंदर्यचेतना मशीनीकरण और प्रशिक्षण की प्रक्रिया के अनुरूप बदलती है। कलाकार के स्तर पर हर्ष का कला संबन्धी द्वन्द्व 'कंपन' फिल्म में विद्यमान है। दैनिक जीवन में मशीनी-तकनीक की घुसपैठ ने साहित्य एवं संस्कृति की प्रकृति को बदल दिया। सामंतवादी कला की पृष्ठभूमि से औपनिवेशिक कला-दौर में पहूँचती 'वर्षा' मशीनीकरण की चुनौतियों का सामना करती हैं। कला फिल्म के निर्देशक सिद्धार्थ स्याल का मत है - 'बहुत प्रभावशाली हुआ। बिलकुल वैसा ही, जैसा मेरे जेहन में था'।

औपनिवेशिकता ने कला की सृष्टि, संप्रेषण, आस्वादन, समीक्षा आदि सभी स्तरों पर प्रभाव डाला। उसने कला के क्षेत्र में प्रशिक्षण की भूमिका को अनिवार्य बताया। औपनिवेशिक सौंदर्यबोध के अनुसार वही कलाकार होगा जो मशीनों की गति, रंग, ध्वनि आदि के अनुरूप खुद को ढालने में प्रशिक्षित हो। संस्कृत काव्य को सभा की पिछली पंक्ति में बैठकर सुननेवाली वर्षा जब दिव्या से परिचित होकर आगे जब एन.एस.डी. में पहूँचती है तो वह पहली बार प्रशिक्षण की प्रक्रिया से द्वन्द्व अनुभव करती है। ' 'चरित्र की तुम्हारी जो व्याख्या है, वह निर्देशक

की संपूर्ण प्रस्तुति की व्याख्या से बिलकुल उलटी है।' डॉक्टर अटल बोले।' कला और प्रतिभा की सहजात वृत्ति को उपनिवेशवादी सौंदर्यचेतना नकारती है और प्रशिक्षण को ही कला का अनिवार्य तत्व घोषित करती है।

कालिदास के नाटकों के माध्यम से उपन्यास यह बता देता है कि सामंतवादी सौंदर्यचेतना किस तरह पुरुष-केंद्रित रही। पुरुष जिस नज़रिए से स्त्री को देखता था, वही सामंतवादी नारीविमर्श का आधार रहा। पुरुष ने अपनी रुचि के अनुसार अपने ही मनोरंजन के लिए नारी का रूप-सौन्दर्य, व्यवहार, दायित्व, शील आदि संबन्धी संहिताओं को बनाया है। वर्षा की नौटंकी के पूर्वाभ्यास को लेकर पिताजी की प्रतिक्रिया है - 'मुझे सिर्फ अपने घर से मतलब है। तेरे साथ लडके भी काम कर रहे हैं। एक के साथ तू नाचती और गाना गाती है... जगह नहीं मिलेगी।'

औद्योगिक क्रांति का नतीजा यह था कि भारत जैसे देशों की नारी को दुहरी उपनिवेशिकता झेलनी पडी। उसे एकओर रूढिगत पुरुष वर्चस्व को ढोना पडा तो दूसरी ओर पूँजीवादी ताकतों ने भी उसके जीवन पर अवरोध डाल दिया। उपन्यास में मशीनीकरण और प्रशिक्षण पर एकाधिकार रखनेवाले पुरुष वर्ग का भी चित्रण हुआ है। 'दिव्या' नारी और कला संबन्धी संहिताओं के निर्माण में पुरुष वर्चस्व का समर्थन करती दिखाई देती है, 'मैं ने सिर्फ इतना किया है कि वर्षा के हाथों में एक कुंजी थमा दी... उन्होंने जिस दरवाज़े में कुंजी लगायी वह खुल गया।

दूसरी लहर के क्षीण होने के साथ उपनिवेशित समाजों को गैर-उपनिवेशिकता की प्रक्रिया से गुज़रना पडा और नारी वर्ग को अपनी अस्मिता की पहली पहचान

भी होती है - 'हाईस्कूल का फॉर्म भरते समय सबसे पहले अपनी विरासत को नकारते और आत्मशुद्धि करते हुए उसने अपना नाम बदल लिया - - वर्षा वशिष्ठ!' उत्तर उपनिवेशवाद ने नारी को पुरुषप्रधान समाज की वर्चस्वशाली संरचना से मुक्त किया साथ ही अपनी रुचि के अनुसार जीवन और कला की लीकों पर स्वतंत्र रूप से बढने का मौका भी दिया। 'वर्षा' व्यक्तिगत जीवन और कलाक्षेत्र दोनों में 'हर्ष', 'सिद्धार्थ स्याल' जैसे पुरुषों का सामना करती है और उस बिन्दु तक पहूँचती है जो उत्तर औपनिवेशिक कला का केंद्रक हो।

बाज़ार की माँग और पूर्ति के अनुसार नारी संपूर्ण कला जगत की चमक (ग्लैमर) बनती है। साथ ही, बाज़ार और सूचना-तंत्र द्वारा संचालित कला की बागडोर वर्षा के हाथों में आ जाती है। सभ्यता की तीसरी लहर में नारी सूचना-प्रौद्योगिकी के प्रभाव से पुरुष के समान दर्जे की घोषित की जाती है। वह रूढिगत नारी-विरोधी संहिताओं को लाँघकर बाहर निकलती है। उपन्यास के क्रमिक विकास के साथ 'चाँद' भी और प्रकट होता रहता है और संपूर्णता को चाहनेवाली नारी की 'प्यास भी बुझ जाती है'।

सभ्यता की तीसरी लहर ने बाज़ार-तंत्र और सूचना-प्रौद्योगिकी के अनुकूल कला एवं सौंदर्यबोध की पुनर्रचना की है। देश, काल और संस्कृति से ही नहीं, कलाकार से भी कला एकदम स्वतंत्र हो जाती है। सूचना - प्रौद्योगिकी की वजह से कला का संक्रमण मास मीडिया या 'पॉपुलर कल्चर' में होने लगा। कला का माध्यम बहुआयामी (multidimensional) हो गया। बहु-माध्यम से दर्शक अपनी मर्जी

के अनुसार माध्यम एवं विचार पक्ष का चयन कर सकता है। बाज़ार की बिक्री की संहिताएँ कला और सौंदर्य के मापदण्ड बन जाती हैं। विज्ञापन, बेस्ट सैलर, पुरस्कार, मेला, प्रदर्शिनी ऐसे अतियथार्थों या चंचल-यथार्थों की रचना करते हैं जो कला के संदर्भ को निश्चित और निर्धारित करते हैं।

नई विलासपरक रुचियों का निर्माण और उनके उपयोग पर ज़ोर दिये जाने लगा। कलाकार वह उत्पादक बन जाता है, जिसे पाठक/श्रोता/दर्शक (उपभोक्ता) की माँगों के अनुरूप कला का सृजन करना पडता है। सूचना-प्रौद्योगिकी की पुष्टि से इलक्ट्रॉनिक मीडिया का परिदृश्य तेज़ी से बदल रहा है। 'विलयन', 'मोरफिम', जैसे उत्तर-आधुनिक सूचना-क्रांति की प्रविधियाँ कलाक्षेत्र में उल्लेखनीय भूमिका निभाती है। इसका समावेश रमन राजदाँ की फिल्म 'गायिका' और सिद्धार्थ स्याल की कला फिल्म में हुआ है।

दार्शनिक जॉक देरीदा ने साहित्यिक भाषा के अध्ययन में नया आयाम जोड दिया है। देरीदा, जेमसन, जूलिया क्रिस्टेवा, पॉल डी. मान जैसे आलोचकों ने भाषिक अर्थ के लचीलापन पर बल दिया है। देरीदा के 'भेदन' सिद्धांत के अनुसार पाठों की अनंत पुनर्रचना संभव है। पॉल डी. मान के संकेत चिह्नों संबधी सिद्धान्त के अनुसार 'चाँद', 'जलती जमीन', 'सिलबिल' आदि का विश्लेषण हुआ है। जूलिया क्रिस्टेवा का 'अन्तर्पाठीयता', रोलांड बार्थ का 'लेखक का अंत' आदि की भाषा की व्याख्या नये तरीके से प्रस्तुत करते हैं। सिद्धांतकार जेमसन का 'पैरोडी' और 'पेश्टीच' सिद्धान्त भाषिक संरचना की नई प्रविधि है।

उपन्यास में ऐसी भाषा और शैली का प्रयोग हुआ है जो सूचना-तंत्र से अनुकूलित हो। 'जलती ज़मीन', 'दर्द का रिश्ता' जैसी फिल्मों में देश, काल और संस्कृति से पृथक भाषिक प्रयोगों के नमूने विद्यमान हैं। 'गायिका', 'दस्यु सुंदरी' जैसी पटकथाओं में मीडिया के दबाव में पडी हिन्दी की अभिव्यक्ति हुई है। अंग्रेज़ी में लिखी हुई पटकथा का संवाद तो हिन्दी है। 'जलती जमीन', 'दर्द का रिश्ता' आदि में हिन्दी और अंग्रेज़ी की मिश्रित शैली - 'हिंगलीश' दिखाई देती है - 'भूतपूर्व पत्नी', 'असमाधानीय तनाव' रफ ज़िंदगी आदि। मीडिया के दबाव से दर्शकों की बहुविविधता, बहुराष्ट्रीयता आदि प्रकृतियों को ध्यान में रखकर हिन्दी के बदलने के नमूने उपन्यास में पाये जाते हैं। हॉलीवुड फिल्म 'पैलेस ऑफ होप' में प्रयुक्त 'मिडिल एजिड है' - 'मुक्ति' की प्रोड्यूसर है' इसका उदाहरण है।

सुरेन्द्र वर्मा के 'मुझे चाँद चाहिए' उपन्यास का उत्तर औपनिवेशिक परिप्रेक्ष्य में अध्ययन करने पर पता चलता है कि इस उपन्यास के दो प्रमुख पक्ष हैं, सौंदर्यबोध और नारी विमर्श के बदलते स्वरूप। कलात्मक सौंदर्यबोध के तौर पर औपनिवेशिक सौंदर्यबोध की जाँच-पडताल करने पर सामंतवादी सौंदर्यचेतना से औद्योगिक सौंदर्यचेतना, मशीनीकरण और प्रशिक्षण के अनुकूल बदलते दिखाई पडती है। उपन्यास के केंद्रपात्र वर्षा के ज़रिए इसका जिक्र हुआ है। प्रतिभा के अभाव के बावजूद वर्षा औद्योगिक सभ्यता की सहायता से कलाकार के तौर पर प्रतिष्ठित हो जाती है। उत्तर औपनिवेशिक सौंदर्यबोध वैश्वीकरण की एकछत्रता में नए माहौल से सृजित है। सूचना-प्रौद्योगिकी एवं बाज़रतंत्र से संचालित मीडिया साम्राज्यवाद ने नए सौंदर्यशास्त्र की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। यहाँ

कला की अमूर्तता तथा उच्च और निम्नकला के वर्गीकरण को नकारते हुए 'पॉपुलर कल्चर' का स्वागत हुआ है जो समूचे समाज को अपने कब्जे में लिए है। विवेच्य उपन्यास में 'पॉपुलर कल्चर' के भिन्न आयाम-विज्ञापन, मॉडल-फैशन, पुरस्कार-समारोह आदि का प्रस्ताव उपलब्ध है। फिल्म-फोटोग्रफी, कंप्यूटर-ग्राफिक्स और 'मास' उत्पादन ने उत्तम कला का स्वरूप ही बदल दिया है। मीडिया-साम्राज्यवाद की रणनीति है स्थानीय को अप्रासंगिक बनाते हुए, सूचना और मनोरंजन का मुफ्त प्रवाह बनाए रखना जिससे अमेरिका का वैचारिक प्रभुत्व बना रहे। उपन्यास में वर्षा एवं अन्य पात्रों द्वारा इसका संकेत काफी मात्रा में विद्यमान है।

सामंतवादी नारी विमर्श पुरुष निर्मित था अतः, उपनिवेशित नारी को दुहरी औपनिवेशिकता का संघर्ष झेलना पडा। वर्षा, गैर-औपनिवेशिक संदर्भ में अपनी अस्मिता को ढूँढनेवाली भारतीय नारी का प्रतिनिधित्व करती है। वह उत्तर औपनिवेशिक संदर्भ में अपनी मुक्ति की सही दिशा को पहचानती है। उपन्यास के क्रमिक विकास के साथ प्रकट होता 'चाँद' एक ओर नारी की मुक्ति का द्योतक है तो दूसरी ओर वह कला की संपूर्णता का परिचायक भी है। उपन्यास की भाषा बाज़ार, मीडिया-तंत्र आदि से अनुकूलित हैं। संस्कृति मुक्त, लिंग मुक्त 'हिंग्लीश' का प्रयोग बडे पैमाने पर दृश्यमान है। भाषिक संरचना में उत्तर संरचनावाद का अनुप्रयोग करते हुए भाषायी प्रयोग की महत्ता अभिव्यक्त है।

अतः इन विश्लेषणों के आधार पर सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यास के कथ्यपक्ष और शैलीपक्ष उत्तर औपनिवेशिक अवधारणाओं को उजागर करने में सशक्त दस्तावेज माना जा सकता है।